P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-XI*July-2016

अद्वैत दर्शन में भक्ति का स्वरूप

सारांश

भक्ति जो समर्पण भावना का ही पर्याय है। मानव जीवन की वृत्ति है जिसके कारण मानव की समस्त ऊर्जा किसी एक दिशा की ओर प्रवाहित होती है। आधुनिक युग में विकास के लिये मनुष्य भक्ति वृत्ति स्वीकार करता है। जैसे– जीवन संग्राम में लगे हुए कर्मठ व्यक्ति किसी न किसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिये पूर्ण निष्ठा के साथ समर्पित जीवन व्यतीत करते हैं और ये समस्त ऊर्जा का एक वृत्ति के माध्यम से संचार तत्वतः भक्ति वृत्ति ही है। इसलिये आज भक्ति की आवश्यक्ता एक स्वभाविक आवश्यक्ता हो गई है। जिसकी पुष्टि दार्शनिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी हो जाती है।

मुख्य शब्द : भक्ति,चित्तवृत्ति, चिन्तन,निष्काम,कर्म,आत्मज्ञान।

अंजलि यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ज्वाला देवी विद्या मन्दिर
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कानपुर

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन का एक मात्र लक्ष्य है 'आत्मदर्शन'। दर्शन ज्ञान की एक विशेष अवस्था है। एकाग्र चित्त से तन्मय होकर आत्मा को या किसी भी वस्तु को देखना 'निदिध्यासन' कहलाता है। इस एकाग्रता के लिये अभ्यास और वैराग्य की सहायता से चित्त की चंचल वृत्तियों को रोककर समाधि में स्थिर हो जाना पड़ता है। इसके लिये अनन्य भक्ति की आवश्यकता होती है, क्योंकि आत्मदर्शन के लिये आत्मा के प्रति भक्ति एवं आत्मा के इतर वस्तुओं के प्रति वैराग्य का होना आवश्यक है।

भक्ति जो समर्पण भावना का ही पर्याय है। मानव जीवन की वृत्ति है जिसके कारण मानव की समस्त ऊर्जा किसी एक दिशा की ओर प्रवाहित होती है। आधुनिक युग में विकास के लिये मनुष्य भक्ति वृत्ति स्वीकार करता है। जैसे– जीवन संग्राम में लगे हुए कर्मठ व्यक्ति किसी न किसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिये पूर्ण निष्ठा के साथ समर्पित जीवन व्यतीत करते हैं और ये समस्त ऊर्जा का एक वृत्ति के माध्यम से संचार तत्वतः भक्ति वृत्ति ही है। इसलिये आज भक्ति की आवश्यकता एक स्वभाविक आवश्यकता हो गई है। जिसकी पुष्टि दार्शनिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी हो जाती है।

'' भक्ति शब्द संस्कृत के 'भज सेवायाम्' धातु में वितन् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है। जिसका अर्थ है भगवान की सेवा करना''।

महर्षि शांडिल्य ईश्वर में परानुशक्ति अर्थात् अपूर्व एवं प्रकृष्ट अनुराग रखने को ही भक्ति कहते हैं। नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। यह अमृत स्वरूप भी है।महर्षि नारद की दृष्टि में भक्ति के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वह स्वयं प्रमाणरूपा है।भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्द रूपा है।शंकराचार्य कहते हैं कि परमेष्वर की निरन्तर उत्कंठा युक्त स्मृति ही भक्ति है। यथा

''या निरन्तर स्मरण पतिं प्रति सोत्कण्ठा सेवयभिधीयते''
शांकरभाष्यम (ब्रह्मसूत्र)4/1/1

उद्देश्य

भक्ति का एक मात्र उद्देश्य परम सत् की प्राप्ति है। उस परम सत् से संसार की समस्त क्रियायें संचालित एवं अनुप्राणित हो रही हैं। भक्ति की भावना के अनुसार वह व्यक्त होता है वह चेतन – अचेतन जगत एवं काल से भी ऊपर तथा पाप पुण्य से भी परे है। भक्तगण भक्ति के लिये ही भक्ति करते है। यही भक्ति का परम लक्ष्य है। अतएव भक्ति ही साधन है और भक्ति ही साध्य है।

भक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनन्य भाव की महती आवश्यकता है। अनन्य भाव का तात्पर्य है जब साधक के मन में यह भावना आ जाये कि मेरा कोई नहीं है तथा मैं सेवा करने के लिये समस्त संसार का होते हुये भी वास्तव में एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का भी नहीं हूँ। इस प्रकार का दृढ़ निश्चय ही साधक को अनन्य चित्त वाला बनाने में परम समर्थ है। अनन्य भाव से ही भक्ति के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेनः मां ध्यायन्त उपासते।। 12/6

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेषित चेतसाम्।। 12/7

भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि जो सम्पूर्ण कर्मों को मुझे अपर्ण कर मेरे प्रति ही तत्पर रह कर अनन्य–भाव रूप योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं, हे अर्जुन! मेरे में चित्त लगाने वाले उन उपासकों का इस मृत्यु रूप संसार–सागर से तत्काल उद्धार करने वाला मैं होता हूँ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्वि मामेवढयस्य संशयः।। 8/7

श्रीकृष्ण कहते है– सब समय तुम मेरा निरन्तर स्मरण करो और यदि अन्तः–करण की अशुद्धि के कारण ऐसा न कर सको तो उसकी शुद्वि के लिए युद्ध करो। जिस मनुष्य ने मुझमें मन और बुद्वि अर्पण कर दिए है ऐसे तुम निःसंदेह मुझे ही प्राप्त करोगे।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि भक्ति की साधना में जिस प्रकार भगवान सत्य है, उसी प्रकार उनका नाम भी सत्य है, रूप भी सत्य है। लीला भी सत्य है और उनका निर्गुण लीला क्षेत्र (विश्व) भी सत्य है।

भक्ति की नीति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः मनुष्य जो भी कार्य करता है, वह सुख पाने के उद्देश्य से ही है। परन्तु मनुष्य को सदा सुख उपलब्ध नहीं होता है। मानव जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख की ही अधिकता है उसके जीवन में आकांक्षाओं, अभिलाषाओं का कोई अन्त नहीं है। इच्छाओं की पूर्ति से उत्पन्न क्षणिक सुख की अनुभूति करते हुए किंचित भी विलम्ब नहीं होता है कि दुख का दावानल भभक उठता है। फिर भी सागर को उत्ताल तरंगों की भॉति इच्छाओं की पुनरावृत्ति मानव के हृदय में होती रहती है किन्तु जो मानव भक्ति युक्त नैतिक जीवन व्यतीत करता है, वह सुख दुःख के द्वन्द में अपना पूर्ण संतुलन बनाये रखता है

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिषिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

अर्थात् वह ईश्वर सर्वत्र हाथ–पैरों को प्रेरित करने वाला सर्वत्र नेत्र, मस्तक और मुखों को प्रवृत्त करने वाला तथा सर्वत्र श्रोत्रों को प्रवृत्त करने वाला ब्रह्म सम्पूर्ण जड़वर्ग को व्याप्त करके स्थित है।

यही भक्ति युक्त नैतिक जीवन की महत्ता है। नैतिक जीवन से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे लौकिक ही कहा जा सकता है, किन्तु नैतिक जीवन के साथ भक्ति का सम्बन्ध जुड़ जाने से वही आनन्द परा–कोटि का हो जाता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह बताया है कि अद्वैत ज्ञान का उद्देष्य मैनें सृष्टि के आदि में सूर्य को दिया, सूर्य ने मनु को दिया, मनु ने ईक्ष्वाकु को दिया और इस प्रकार यह परम्परा से राष्ट्र के शासकों में ज्ञान बना रहा किन्तु बीच में कालातिक्रमण के कारण लुप्त हो गया वही ज्ञान मैं तुमको प्रदान कर रहा हूँ। इस प्रसंग में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यह समझाते हैं कि ''समूची सृष्टि में नैतिक मूल्यों की अवधारणा तथा प्राणि मात्र में अविरोधेन सद्भावना को जागृत करने वाले शासक अध्यात्म शास्त्र के पूर्ण पारंगत हुआ करते थे।''

निष्कर्ष

शंकराचार्य के अनुसार– जीवात्मा अपने स्वरूप में अज्ञान के कारण ही इस संसार में अनन्त कलेषों को भोगता हुआ अपना जीवन–यापन करता है। वह अपने शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वरूप को अविद्या के कारण भूला हुआ है। वास्तव में वह सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्म स्वरूप ही है। जीवात्मा का ब्रह्म से नितान्त ऐक्य है। नानात्व ज्ञान के कारण ही संसार है तथा एकत्व ज्ञान के कारण ही मुक्ति है। आनन्द रूप ब्रह्म की प्राप्ति तथा शोक निवृत्ति ही मोक्ष है।

चैतन्य आत्मा का ज्ञान हुए बिना संसार में कोई मनुष्य परोपकारी अथवा सच्चे अर्थ में कारूणिक नहीं हो सकता इसलिए नैतिकता के अंतिम मूल्यों की परख जिसके आधार पर संसार की मानवता ही नहीं वरन् प्राणी मात्र का हित किया जाता है उसके साथ में एक वाक्यता अनुभूत होती है। इस सम्बन्ध में भारतीय मनीषी जनों की यह सर्वोच्च धारणा उल्लेखनीय है कि वे परम ज्ञान की अवस्था में पहुॅच कर प्राणी मात्र के हित का चिंतन करते हैं। यथा– ''सभी सुखी हों, सभी लोग रोग रहित हो जायें, सभी कल्याणदर्शी हों, कोई भी दुःखी न हो इस प्रकार की धारणा नैतिकता की पराकाष्ठा है, और यह अद्वैत ज्ञान जिसका तात्पर्य प्राणी मात्र के साथ तादात्मय की अनुभूति है के बिना कदापि संभव नहीं है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाणिनीः अष्टाध्यायी 3/3/94
2. सा परानुरक्तिरीश्वरे – शांडिल्य भक्ति सूत्र 2
3. सात्वस्मिन परम प्रेम रूपा – नारद भक्ति सूत्र 2
4. अमृत स्वरूपा च – नारद भक्ति सूत्र 3
5. प्रमाणान्य तरस्यान पेक्षत्वात् स्वयं प्रमाण्त्वात् – नारद भक्ति सूत्र 59
6. शान्ति रूपात्परमानन्द रूपाच्य – नारद भक्ति सूत्र 60
7. शांकरभाष्यम (ब्रह्ममसूत्र)4/1/1
8. भगवद्गीता–12/6
9. भगवद्गीता–12/7
10. भगवद्गीता–8/7
11. भगवद्गीता–12/13